Chapter-3

अध्याय : 3

सामाजिक एवं पारिवासिक समस्याएँ

अध्याय : 3

सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याएँ

पूर्ववर्ती विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है कि आलोच्यकाल के नगरीय परिवेशके उपन्यासों में सामाजिक एवं पारिवारिक आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक प्रभृति नाना प्रकार की समस्याओं का आकलन हुआ है। प्रस्तुत अध्याय में आलोच्यकाल के नगरीय परिवेश संपन्न उपन्यासों में आकलित सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं का विश्लेषण करने का यत्न हुआ है। यहाँ यह तथ्य ध्यानव्य है कि समस्याएँ भी परस्पर जुड़ी हुई होती हैं और कई बार एक प्रकार की समस्या दूसरे प्रकार की समस्या को जन्म देती है। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "रेखा" मे प्रेम-विवाहसे उत्पन्न अन्य मनोवैज्ञानिक समस्याओंको रेखांकित किया गया है। रेखा में वैचारिक परिपक्वता का अभाव दिखता है। मुग्धा-सहज कैशोर्य-भाव की भावुकता में वह रेखा भार्गव से रेखा शंकर तो हो जाती है, परंतु उसमें और प्रोफेसर प्रभाशंकर में वय की दष्टिसे जो अंतर है उसे वह नजर अंदाज कर जाती है, भावुकता के प्रथम दौर के चुक जाने के बाद उसे धीरे धीरे अनुभव होता है कि उसकी यौन-क्षुधा प्रोफेसर से पूर्णतया संतृप्त नहीं हो सकती, फलत: स्वतंत्र यौन-सम्बन्धों का सिलसिला शुरू होता है जो उसके और प्रोफेसर के जीवन को क्षत-विक्षत कर देता है। काम की अतृप्ति के कारण उसके जीवम में सोमेश्वर, शशिकांत, निरंजन, कपूर, शीवेन्द धीर,

मेजर यशवंतसिंह और डॉ॰ योगेन्द्रनाथ मिश्र, जैसे कई पुरुष आते हैं । आधुनिक समाज के सभा - समारोह, होटल, पार्टियाँ आदि स्थान उसके लिए आखेट के स्थल हो जाते हैं । हर जगह उसकी अतृप्त काम-वासना से जलती हुई आँखें जवान जिस्मों को टोहती रहती हैं, लेखक के अनुसार "शरीर का प्रतिनिधित्व करनेवाली चेतना, उसने जो कुछ किया, उसका औचित्य साबित कर रही थी और उसके विवेक की आवाज धीरे धीरे कमजोर होती जा रही थी ।"[1] इस विकृत काम अवस्था के फलस्वरूप वह सोचती है कि आत्मा से पृथक शरीर का भी एक निजी-धर्म होता है और वासनाओं को कुचलकर को भावनाओं में जीना खुलकर जीना नहीं है । अत: विपुल वासना की वैतरणी में वह हमेशा हिचकोले खाती रहती है । यहाँ प्रेम-विवाह एवं अनमेल व्याह की समस्या से यौन-समस्या का जन्म हुआ है जो फिर अनेक समस्याओं का कारण हो सकता है । ऐसी अतृप्त रेखाएँ जिन किशोरों को अपने मोहपाशमें फाँसती हैं, वे समाजमें कई और समस्याएँ पैदा कर सकते हैं । तात्पर्य यह कि समस्या की एक कड़ी दूसरी कड़ी से जुड़ती चली जाती है और फलत: मानव-जीवन की समस्याओं की एक श्रृंखला सी हो जाती है ।

व्यक्तिवादी - चेतना और पारिवारिक विघटन :

संयुक्त परिवार हिन्दू समाज का मूल आधार और आदर्श रहा है । हमारे देशकी अर्थ-व्यवस्था में कृषि का महत्व अपरिहार्य था और उसके लिए संयुक्त परिवार की व्यवस्था ही समुचित थी । संयुक्त-परिवार अधिनायकवादी होता है, जिसमें उसके मुखिया की आवाज़ सर्वोपरि होती है ।

उसकी प्रत्येक बात और निर्णय को शिरोधार्य करना एक नैतिकमूल्य के रूप में माना जाता है । परंतु औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न पूंजीवादी व्यवस्थाने संयुक्त परिवार की चूंले भी ढीली कर दी । यह व्यवस्था व्यक्तिवादी है । इस व्यवस्था अंतर्गत व्यक्ति सामाजिक एव आर्थिक रूपसे स्वतंत्र रहने के लिए प्रयत्नशील होता है । पुरानी व्यवस्थामें भावुकता और भक्ति का भाव अधिक था, अत: व्यक्ति की स्वाधीनता का प्रश्न नहीं उठता था । इस नयी व्यवस्था के मूल में है बुद्धि और व्यक्तिवादी चिंतन । इसके तहत प्रत्ये व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत-रूचि, सस्कार और सुविधा का चुनाव करने की छूट रहती है ।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री बर्न्सने संयुक्त परिवार के विघटन को उचित ठहराते हुए इसे समय की मांग बताया है । उनके अनुसार व्यक्ति इसलिए नहीं है कि वह सस्कारों और रूढिगत परम्पराओ की चक्की में पिसता रहे । वह जीवन में बहुत से अच्छे और नये काम करने के लिए पैदा हुआ है ।[2] "सारा आकाश" का संवर भी तो व्यक्ति की मूल प्रवृतियों पर सामाजिक नियंत्रण का विरोध करते हुए सांस्कारिक प्रेतो से मुक्ति पाना चाहता है -- "जिन्दगी की किसी भी काटा में, किसी भी बन्धन में हम चुप नहीं रह सकते । हम कलमों में उतरेंगे, दिमागों पर छायेंगे और नसो में तैरेंगे । हम निरंतर मॉग करते रहेंगे । हमें नया शरीर दो, हमें नया रूप दो, हम इन कष्टों में नहीं रहेंगे, हम निराधार नहीं भटकेंगे ।"[3]

इस वैयक्तिक चेतना के फलस्वरूप परम्परागत धर्म एवं उसके मिथ्याभिमान के प्रति भी व्यक्ति का आक्रोश फूटने लगा है । "सारा आकाश" का शिरीष इस सम्बन्ध में अपनी वैयक्तिक मान्यताओंको उजागर करते हुए कहता है --

"हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा बनाये गये धर्म-नियमों को जहाँ तक संग्रहालय या म्यूजियम में रखने का सवाल है मैं मानता हूँ कि उनके लिए खूब-सूरत काँच की अलमारियाँ होनी चाहिए, लेकिन अगर उन्हें आज के समाज के कानून के रूप में लादना चाहोगे तो मैं कहूँगा कि उन्हें चूल्हे में रखकर चाय बनाइए और ..... खूश होइए कि अपने कंधो पर लदे और गर्दन में दाँत गड़ाये भालू को उतार दे फेंका हूँ ।"[4] यही शिरीष एक स्थान पर उपन्यास के नायक सभर को संयुक्त परिवार की वर्तमान संदर्भ में अर्थहीनता को द्योतित करते हुए कहता है -- "संयुक्त परिवार का शाब्दिक अर्थ चाहे कितना महान हो, उसका सबसे बड़ा दोष यह होता है कि परिवार का कोई भी सदस्य अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता । सारा समय या तो समस्याएँ बनाने में या बनी बनाई समस्याओं को सुलझाने में लग जाता हैं । लड़ाई - झगड़ा, खींचतान, बदला, ग्लानी सब मिलकर वातावरण ऐसा विषैला और दमघोंटू बना रहता है कि आप साँस नहीं ले सकते ।"[5]

युवावर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले अमृतलाल नागर के उपन्यास "अमृत और विष" के रमेश को भी हिन्दुस्तानी जीवन का पुराना ठर्रा बिलकुल नापसंद है । उन्नीसवीं सदीकी वैयक्तिक चेतना को रेखांकित करते हुए इसमें कहा गया है -- "उन्नीसवीं शती के प्राय: अन्तिम दो दशकों से लेकर अब तक व्यक्तियों ने ही समाज को झकोले दिये हैं । पुराना समान प्राय: इन्हीं झकोलों से टूट-टूट कर कमश: नया बन रहा हैं ।[6]

हिन्दी गद्य के निर्माताओं में प्रमुख ऐसे पं॰ बालकृष्ण भट्ट ने भी बहुत पहले इस परिवर्तित स्थिति को भाँपते हुए लिखा था -- "संयुक्त परिवार में

यों तो किसी व्यक्ति की उन्नति करने की संभावना ही समाप्त हो जाती है और फिर यदि कोई प्रतिभाशाली और पुरुषार्थी व्यक्ति निकला भी तो उसकी दुर्गति हो जाती है ।"[7]

उक्त व्यक्तिवादी चेतना के फलस्वरूप संयुक्त परिवार टूट रहे हैं । संयुक्त परिवार के लिए आवश्यक ऐसे एक घर, एक चूल्हा, सम्मिलित पूजा, पाठ, एक इष्ट देवता तथा सम्मिलित सम्पत्ति आदि आयाम अब बेमानी होते जा रहे हैं । फलत: संयुक्त-परिवार के स्थान पर अब आणविक परिवार या मिनि-परिवार की धारणा अधिक पुष्ट एवं बलवती हो रही है । इस आणविक परिवारमें पति-पत्नी और अल्पव्यस्क बच्चे होते हैं । बालिग होते ही बच्चे भी परिवार से अलग हो जाते हैं और उनका एक अलग परिवार बन जाता है । नगर में बसनेवाला भारतीय मध्यवर्ग अपनी व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के कारण क्रमश: आणविक परिवार की और अग्रसर हो रहा हैं ।

"नदी फिर बह चली" का जगलाल ट्रक ड्राइवर होकर पटना में आ गया है । अपने भाई के बच्चों को वह अपने से अलग समझता है । शहर में रहकर वह इतना स्वकेन्द्रित हो गया है कि उसकी पत्नी परबतिया जब उसे अपने भाई खूबलाल की आर्थिक सहायता करने के लिए कहती है तब वह दोनों परिवारों का हिसाब लेकर बैठ जाता है ।

डॉ॰ रामदरश मिश्र के उपन्यास "अपने लोग" के डॉ॰ प्रमोद शुकल दिल्ली के एक कॉलेज में अध्यापक हैं । उनका गाँव गोरखपुर से दस-पंद्रह मील की दूरी पर है । अत: अपने परिवार से अलग होकर वे पति-पत्नी और बच्चों के साथ दिल्ली में रहते हैं । यह गति संयुक्त परिवार से

आणविक परिवार की ओर है । पिता के आग्रह पर वे गोरखपुर रीडर होकर आ तो जातें हैं, परंतु आणविक परिवारकी स्थिति अब उनके मनमें दृढ़मूल हो गई है, अत: वे परिवार से पूर्णतया जुड़ नहीं पाते । अपने भाई रमेश के बीबी-बच्चे जब इलाज के लिए गोरखपुर आकर उनके यहाँ ठहर जाते हैं तब समूचे परिवार में एक कडवाहट का वातावरण छा जाता है । वैसे इसके पीछे आर्थिक समस्या भी जुड़ी हुई है ।

पृथ्वीराज मोंगा के उपन्यास "कांचका आदमी" में परिवारके आंतरिक विघटनका कारण उसके नायक सुरेश का प्रेम-विवाह है । सुरेश नीरा से प्रेम-विवाह करके अपने माता-पिता तथा बहिनों से अलग हो जाता है । फलत: आर्थिक विवशता के कारण उसकी बहिन कमला की शादी उसके माँ-बाप रामलाल जैसे एक नितान्त अयोग्य एवं अशिष्ट व्यक्ति से कर देते हैं । उसकी दूसरी बहिन किसीसे प्रेम करती है । उसका गुप्त पत्र व्यवहार नायक सुरेश को व्यथित तो करता है, परन्तु वह कुछ नहीं कर सकता क्योंकि पत्नी नीरा विलासितापूर्ण फैशनेबुल जीवन जीनेकी अभ्यस्त है जो संयुक्त परिवारमें रहते हुए संभव नहीं है ।

संवेदनशील कथाकार एवं आधुनिक भाव बोध के चितेरे श्री निर्मल वर्मा कृत "वे दिन" में आणविक परिवार के अस्तित्वकी प्रक्रिया आज के नितान्त अकेले होते जाते मनुष्यकी त्रासद एकलता व अजनबीपन के भावों को संप्रेषित करती है । इसके सभी पात्र - " मैं ", रायना, जाक, फ्रांज, मारिया, टी·टी· -- अपने-अपने परिवारों से कटे हुए हैं । विदेशी होने के नाते प्रागमें " मैं " और टी·टी· की गिनती अजनबियों में होती है और अपने

देश में भी वे शायद अज़नबी करार दिए जाएँ क्योंकि उनके ही शब्दों में -- "हम ऐसे बर्षों में घर छोडकर चले आये थे, जब बचपन का सम्बन्ध उससे छूट जाता है, और बड़प्पनका नया रिश्ता जुड़ नहीं पाता । अब घर बहुत अवास्तविक-सा ज़ान पड़ता था, जैसे वह किसी दूसरे की चीज़ हो, दूसरे की स्मृति । ····· वह अब अर्थहीन था -- और किंचित् हास्यास्पद ।"[9]

यह दो-तरफ़ा अज़नबीपन उनकी ट्रेजड़ी है । अपनी जमीन और परिवेश से वे कट चुके हैं । यह भयावह एकलता उन्हे भीतरसे काटती है । टी·टी· की माँ बर्मा में दूसरा विवाह कर लेती है । इसके उपलक्ष्यमें टी·टी· एक पार्टी रखता है क्योंकि इस खुशी के (११) मौके पर वह अकेले नहीं पीना चाहता । वस्तुत: यह उसके भीतरी टूटन का सकेत है । उपन्यास का नायक " मैं " अपनी बहिन के पत्र को कई दिनों तक अपठित रूपमें छोड़ देता है । इसमें परिवारसे विलगाव एवं विरसता को लक्षित किया जा सकता है । रायना और जाक (उसका पति) अलग-अलग रहते हैं, अपने पुत्र मीता को वे छुट्टियों में बारी-बारी से बाँट लेते हैं । बाकी दिन उसके होस्टेल में गुजरते हैं । यहाँ आणविक परिवार के विघटन की भी प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है । रायना सैक्स को शरीरकी एक आवश्यकता समझती है, जिसके लिए पति पर निर्भर रहना आवश्यक नहीं है । इस सम्बन्ध में वह नैतिकता के प्रश्न को बीचमें नहीं लाती । अपनी पसंदके किसी भी पुरुष के साथ (यदि उसे विरोध न हो) वह अपनी इस यौन आवश्यकता की पूर्ति कर लेती है । यौरोप - अमरिका में स्त्री अब इससे भी आगे बढ़ रही है । अपनी यौनाकांक्षा की पुर्तिक लिए अब वह पुरुष

पर भी निर्भर नहीं है । वहाँ स्त्रियों में समलैंगिक यौनाचार एवं डिल्डो (dildo)[10] का प्रचलन बढ़ रहा है । पति-पत्नी की तरह वहाँ दो लड़कियाँ बरसों साथ रहती हैं । मातृत्वकी इच्छा होने पर कृत्रिम गर्भाधान (Avtificial Insemination)[11] की व्यवस्था को वहाँ कानूनी स्वरूप दिया गया है । एक सर्वेक्षण के अनुसार समलैंगिक यौनाचार (Lesbians) में लिप्त प्राय: 50 प्रतिशत महिलाएँ अब कृत्रिम गर्भाधान से मातृत्वको प्राप्त करती हैं ।[12] इन कारणों से यह आणविक परिवार परमाणविक परिवारों में परिवर्तित न हो जाय तो आश्चर्य की बात है ।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ॰ के॰ एम॰ कापडिया के अनुसार -- "हिन्दू परिवारसे तात्पर्य संयुक्त परिवार रहा है । संयुक्त परिवारको हिन्दुओंकी एक विशेषता माना जाता है ।"[13] किन्तु औद्योगीकरण के प्रभाव एवं इस बीसवीं शतीं में पश्चिमकी व्यक्तिवादी चेतना के फलस्वरूप अब मनुष्य की स्थिति उसकी आयसे निर्धारित होती है । फलत: इन परिवर्तित सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में संयुक्त परिवार विघटनोन्मुखता की ओर अग्रसर हो रहा है और उसकी छोटी इकाइयों के रूपमें नये आणविक परिवार अस्तित्व में आ रहे हैं । नगरोमें यह प्रक्रिया अधिक क्षिप्र है । "अन्धेरे बन्ध कमरे", "अंतराल" (मोहन राकेश)", "एक पतिके नोट्स", (महेन्द्र भल्ला), "दूसरी बार" (श्रीकान्त वर्मा", "आपका बन्टी" (मन्नू भण्डारी), "कडिया" (भीष्म साहनी), "तीसरा आदमी" (कमलेश्वर), "एक कटी हुई जिन्दगी एक कटा हुआ कागज" (लक्ष्मीकान्त वर्मा),

"चित्तकोबरा" (मृदुला गर्ग), प्रभृति उपन्यासों में हमें यह आणविक परिवार ही उपलब्ध होते हैं । पति-पत्नी और बच्चों के अतिरिक्त द्वितीयक सम्बन्धों के पात्र मिलते हैं । इन द्वितीयक सम्बन्धोंकी धुरी प्राय: आर्थिक रहती है और पारिवारिक सम्बन्धोंके स्थान पर इनका महत्व अब बढ़ रहा है क्योंकि पारिवारिक सम्बन्धों में उत्तर दायित्व है जब कि यहाँ व्यावसायिक लेन-देन, जो आजके बुद्धिवादी मनुष्यके अधिक अनुकूल है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि औद्योगीककरण , नगरीकरण, व्यक्तिवादी चेतना, भावना के स्थान पर बौद्धिकता, व्यापकता के स्थान पर संकोच, आर्थिक स्वातंत्र्यकी भावना, नारी-विद्रोह तथा धर्म में अनास्था इत्यादि कारणों से संयुक्त परिवार विघटित होकर आणविक परिवारों में बदल रहे हैं । परिवारकी इस विभावना से जहाँ व्यक्तिगत विकासकी संभावनाएँ बढ़ गई हैं । नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को अंगीकृत किया जा रहा है । वहाँ इसके कारण पति-पत्नी, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में कुछ स्वच्छन्दता भी आयी है । जिसके कारण उनके दाम्पत्व जीवन खंडित हो रहे हैं । तलाककी घटनाएँ बढ़ रही हैं । छोटे बच्चोंका जीवन विषाक्त हो रहा है । आत्मीयताके स्थान पर व्यावसायिकता बढ़ रही है और मनुष्य भीड़ में भी अकेला हो रहा है । व्यक्तिगत जीवन-स्तरकी, स्पर्द्धा ने मनुष्य के सुख और संतोष को छिन लिया है । वह बेतहाशा भाग रहा है, पूरी दुनिया को समेटने के लिए और इसी उपक्रम में वह बौद्धिक तनावों और दबावों में एक कुंठित जीवन जीने पर विवश हो रहा है ।

प्रेम - विषयक विभावना में परिवर्तन :

हमारे साहित्य में प्रेम के माहात्म्य का सदैव गुणगान हुआ है और उसमें शरीर की अपेक्षा आत्मा, तन की अपेक्षा मन को अधिक ऊँचा स्थान मिला है, परन्तु परिवर्तित स्थितियों में भौतिकवादी दृष्टिकोण, उपयोगितावाद, भोगवादी प्रवृत्ति, यौन-स्वच्छन्दता आदि के कारण प्रेम-विषयक दृष्टिकोण में भी अन्तर आया है । पुराना आत्मिक प्रेम अब व्यक्ति के विकास में बाधक माना जाता है । अस्तित्ववादी चिंतन ने भी इस प्रेम-विषयक विभावना को धक्का पहुँचाया है क्योंकि अस्तित्ववादी चिंतक प्रेम के मूल्यों को नकारता है । वह प्रेम को व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक मानता है । दो-दो महायुद्धों की विभीषिका ने भी पश्चिम को झकझोरा है । वह क्षत-विक्षत हो गया है । टूट गया है । बिखर गया है । इस टूटन, इस बिखरावने भी मनुष्य को प्रेम की पुरानी विभावना से अलग किया है ।

"वे दिन" यूरोप की महायुद्धोत्तर दिशाहीनता को उद्घाटित करनेवाला उपन्यास है । युद्ध न केवल कुछ लोगों को खत्म कर देता है, प्रत्यक्ष अपने पीछे एक काली विषाक्त, अवसाद में डूबी हुई भयानक शांति को छोड़ जाता है, जिसे भोगनेवाले व्यक्ति जीवित होते हुए भी संवेदना के स्तर मुर्दे के समान होते हैं । युद्धोत्तर शांति के विषपान से उनकी संवेदना भोंथरी पड़ जाती है । अत: रायना ठीक ही कहती है : "लेकिन कुछ चीजें हैं जो लड़ाई के बाद मर जाती हैं -- शांति के दिनों में ..... हम उनमें से एक थे । ..... वे लोग घरेलू जिन्दगी में खप नहीं पाते । ...

.....मैं किसी काबिल नहीं रह गयी हूँ .....नाट ईवन फार लव । पीस किल्ड इट .....।"[14]

अत: इन बदली हुई स्थितियों में प्रेम दो आत्माओं का नहीं, बल्कि दो शरीरों का मिलन माना जाता है । पश्चिम में तो वह संभोग का समानार्थी ही बन गया है । "एन एबी झेड आूफ लव" या "आर्ट आॅफ लव" जैसे शीर्षकों से यही द्योतित होता है । वह महज एक शारीरिक धर्म बन गया है और हवा, पानी, खुराक आदि की भाँति उसकी पूर्ति भी यथा समय हो जानी चाहिए । "वे दिन" की रायना एक तलाकयाक्ता महिला है । वह ज्यादा दिन अकेले नहीं रह सकती । वह प्रेम को शरीर की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में ही लेती है । शिक्षित होने के कारण स्वयं कमाती - खाती है । उसका अपना एक व्यक्तित्व है । कुछ-कुछ दिनों में वह अपने मन-पसंद साथी से प्रेम कर लेती है । जब वह आस्ट्रिया से प्राग छुटियाँ बिताने जाती है, तब उपन्यास के नायक " मै " से मिलती है । " मैं " उसका इण्टर प्रीटर है । वापिस जाने से पहले वह एक रात उसके साथ सोती है । परंतु इस सम्पूर्ण क्रियाकलाप में वह निस्संग रहती हैं । शरीर, शरीर का आनंद लेता है, मन को उसमें involve करना वह ठीक नहीं समझती । पाप-पुण्य या नैतिकता को भी वह बीचमें नहीं लाती । एक स्थान पर वह कहती है -- "मैं सिर्फ चाहती हूँ कि दूसरे को बाद में पछतावा न हो .. . दैन इट इज़ मिजरी ।"[15]

"वे दिन" में इस यौन - स्वतंत्रता का वर्णन कई स्थानों पर हुआ है । प्राग के छात्रालयों में यह नियम है कि कोई भी छात्र आठ बजे तक अपनी प्रेमिका को ला सकता है । जब कोई अपनी "डेट" को लाता है, शेष रूम-पार्टनर बाहर चले जाते हैं । सर्दियों में बाहर प्रेम करने की असुविधा के कारण होस्टल से गेट कीपर को कुछ "क्राउन" देकर ये लोग "कीज़ ओफ पैरेडाइज़" को प्राप्त कर लेते थे ।[16]

प्रेम विषयक दिव्यता, पवित्रता या भव्यता के समाप्त होने पर एतद्विषयक गोपनीयता भी समाप्त होती जा रही है । **Group Sex** अब पश्चिम में कोई नयी बात नहीं है । "वे दिन" में अपने रूमानियन मित्र और उसकी प्रेमिकाओं के कारण नायक " मैं " को प्राय: अपनी शामें बाहर काटनी पड़ती थी । " मैं " के शब्दों में -- "यों वह मेरे प्रति क्रूर नहीं था -- उसने कई बार मुझसे कहा था कि मैं आँखें मूदकर अपने पलंग पर लेट सकता हूँ, उसे और उसकी साथिन को कोई आपत्ति नहीं होगी । उसने यह भी आश्वासन दिया था कि मैं चाहूँ तो बीच-बीच में आँखे खोल भी सकता हूँ ।"[17]

रमेश बक्षी कृत "बैसाखियोंवाली इमारतें" का नायक भी प्रेम के इस पुराने रूप को धिक्कारता है । उसके अनुसार प्रेम "महज दिमागी विलास", "जीभ पर उगा कैंसर"[18] "बेहद गरम देश में जमाई गई आइस्क्रीम"[19] या "चुइंग गम"[20] "आउट आँफ डेट और प्राचीन संस्कृतिप्रधान परम्परायुक्त मूर्खता"[21] समझता है । अत: अपनी प्रशंसिका, पत्नी और प्रेमिका में से वह किसी को भी सही रूप में नहीं चाह सकता । उसका दृष्टिकोण

शतप्रतिशत भौतिकवादी है । पत्नी से अलग होने से पूर्व वह एकबार उसे पूर्णतया भोग लेना चाहता है, परन्तु उसकी पत्नी उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है तब वह बलात्कार का असफल प्रयास करता है ।

इसी उपन्यास की मिस जायसवाल भी प्रेमकी पुरानी विभावना को नकारती है : "मैं प्यार मुहब्बत में बिल्कुल विश्वास नहीं करती, मैं ऐसी पहचान चाहती हूँ, जिसका भूत-भविष्य कुछ भी नहीं हो । कटे हुए लोग कहीं मिल जायें और मिलकर किसी भी दिशामें खो जायें । मैं इसी को आदर्श मानती हूँ ।"[22] परम्परागत जीवन-मूल्यों को नकारते हुए वह कहती है : "कोई मुझे फ्लर्ट कहे तो मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि यह मेरी सबसे बड़ी सामाजिक उपलब्धि है ।"[23] अपनी इस वैचारिक स्वतंत्रता या स्वच्छन्दता के कारण वह बैचलरों की अपेक्षा विवाहित लोगों को अधिक पसंद करती है : "ये कुँवारे लोग बड़े बकवास होते हैं । प्यार इन पर अफीम की गोली का-सा असर करता है और असल में होता है वह चोकलेट । वे ज्यादा कुछ करेंगे तो नोच-खसोट लेंगे । मेरे मनमें उन सबके प्रति एक डिसलाइकिंग है । उनसे दोस्ती करने का मतलब है, अपना वक्त जाया करना ।"[24]

महेन्द्र भल्ला के उपन्यास "एक पतिके नोट्स" में भी इसी शारीरिक धरातलवाले प्रेमकी अभिव्यक्ति हुई है । अपने पडोसी किशोरी की बहिन चन्द्रा के सम्बन्ध में वह अपनी पत्नी से कहता है : "चन्दा शादी के बाद फैल जायेगी । xxx तब वह बढ़िया हो जायेगी । कुँआरेपन का खुरदरापन पालिश हो जायेगा । उस वक्त से फैलने तक के बीच छोटे से अरसे के लिए

वह गजब ठायेगी ।"[25] दूसरी लडकियों के प्रति इस प्रकार के दृष्टिकोण से देखना सैकसी ही कहा जायगा ।

अपने दैनंदिन जीवन की व्यर्थता और विरसता को भेटने के लिए वह (उक्त उपन्यास का नायक) पडोसी किशोरी के पत्नी सन्ध्या से, संभोग करता है । संभोग के बाद पूछता है क्यों । "इस क्यों के कई मतलब थे । एक तो सीधा कि क्यों, कैसा रहा । दूसरा कि क्या मैं किशोरी से बेहतर कर पाया हूं ।"[26] यहाँ एक संभोग-चित्र भी लेखक ने दिया है -- "एकाएक अजीब भाव से मैने उसकी टांगों को कौंची की मानिंद खोल दिया । बीचमें पड़े अपने रूमाल को निकाल के परे फेंक दिया । कुछ दिन पहले शेव्रकी गई कलूटी-चमड़ी के बीच आँखों के लाल कुकरों में थोड़ी सफेदी बची थी । xxx मेरा मुंह बिचक गया । मैं छलांग-सी लगाके उसके साथ लेट गया और उसे पकड़कर उसके अंगों को मसलन, तोडने-मरोडने लगा । मुझे कहीं कुछ नष्ट करना था । यों तैयार मैं बहुत बादमें जाके हुआ ।"[27]

राजकमल चौधरी कृत "मछली मरी हुई" में भी प्रेमके शरीरी-रूप को ही लिया गया है । इसमें समलैंगिक यौनाचारों में डूबी प्रिया, शीरीं जैसी आधुनिकताओं तथा पश्चिमी सभ्यता से आक्रान्त कल्याणी जैसी रमणियों का चित्रण हुआ है । इसके सभी पात्र प्रेमके इस आधुनिक दृष्टिकोण के अनुरूप हैं । कल्याणी के पूर्व इतिहास को जानते हुए डॉ॰ रघुवंश कल्याणी को अपनी पत्नी के रूपमें स्वीकार करते हैं । निर्मल पद्मावत जब प्रिया पर बलात्कार करता है, तब डॉ॰ रघुवंश उसके प्रति कृतज्ञ होते

हैं कि उसने प्रिया को समलैंगिक यौनाचार से प्राप्त आनंद के स्थान पर वास्तविक संभोग का आनंद देकर उसे नार्मल किया है ।

मृदुला गर्ग के उपन्यास "चित्त कोबरा" में उपन्यासकी नायिका मनु अपने पुरूष उपभोक्ता (पति) की तात्कालिक मानसिकता के बारेमें अनुमान करती है : "वह चाहता होगा इसके तीन जोड़ी ओंठ हों । एक मेरे ओठों पर रखे, एक एक उरोजों पर । या दोनों चूचुक एक साथ एक जोड़ी ओंठ में दबोचकर तीसरे ओंठ मेरी टाँगोके बीच उन ओठो पर रख दे जो इस समय भी उसके आगमन की अपेक्षा में तिरमिरा रहे हैं । पर उसके सिर्फ एक जोड़ी ओंठ हैं, जो इस वक्त उसकी जवान का साथ दे रहे हैं ।"[28]

श्रीकान्त वर्मा कृत "दूसरी बार" का नायक " मैं " भी प्रेम को स्त्री-पुरूष के शारीरिक सम्बन्धों तक सीमित मानता है । उसके अनुसार स्त्री को कमरे में नग्न चलते देखना अपने आप में एक अनुभव है । समूची स्त्री सजीव होती है । प्रत्येक अंग का अपना सहज विन्यास होता है ••• और स्त्रीका शरीर और भी लुभावना प्रतीत होता है ।"[29]

महीपसिंह के उपन्यास "यह भी नहीं" की शांता उन्मुक्त सैक्स में रूचि रखती है । अंग्रेजी के प्रोफेसर सोहन से प्रेम-विवाह करके और एक बच्चे - टोनी की माँ होकर भी वह एक बाँह से दूसरी बाँहमे हिचकोले खाती रहती है । इसके कारण सोहन और टोनी के जीवन में कटुता और तनाव पैदा होते हैं । पत्नीत्व वह निभा नहीं पाती, मातृत्व इसके बसका रोग नहीं ।

प्रेम विषयक इस उन्मुक्त-स्वच्छन्द विभावना के कारण स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी के सम्बन्धों में स्थैर्य का अभाव दिखने लगा है । इसने कई सामाजिक समस्याएँ पैदा की है । वैवाहिक जीवन की स्थिरता, गंभीरता एवं पवित्रता को इससे गहरा आघात पहुँचा है । दाम्पत्य की दीवारें खोखली हुई है । बच्चे अब प्रेमकी उपज न रहकर वासना पूर्तिके अवांछित परिणाम हो गए हैं । यह उपेक्षित लावारिस बच्चे जो प्रेम के भूखे हैं, समाज के लिए समस्या रूप बन सकते हैं । उक्त यौन-उच्छृंखलता अभी तो समाज के उच्च, आधुनिक, शिक्षित लोगों तक सीमित हैं, परन्तु जैसा कि हमेशा होता आया है, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग उच्चवर्गका अनुसरण करते है, यदि यह प्रवृत्ति समाज के अन्य वर्गों में फैली तो उसकी उत्तर दायित्वहीनता समाज को तहस-नहस कर सकती है । भारत जैसे गरीब देशको यह यौन - उन्मुक्तता महँगी पड़ेगी । दूसरे समाजका एक बहुत बड़ा वर्ग शिश्नोदरजीवी हो जाय, वह किसी भी समाज या राष्ट्र के लिए हितकर नहीं है । अपने सामने कोई बड़ा, ऊँचा आदर्श न रखकर अपने को केवल सैक्स तक ही सीमित कर लेना, जीवनका बड़ा ही संकुचित - छोटा दृष्टिकोण है जो मनुष्यको और अन्तत: समाज और राष्ट्र को पतन की ओर ले जा सकता है ।

यह यौन - उन्मुक्तता व्यक्ति व समाजको रोगी भी बना सकती है । "सीफिलीस" (Syphitis) और "गोनोरिया" जैसी भयँकर बीमारियाँ (Venereal diseases) इससे फैल सकती हैं । पश्चिमी जगत, जिसके नामसे थर-थर काँपता है वह "एड्डज" की बीमारी भी उन्मुक्त यौन-सम्बन्धों द्वारा एक व्यक्ति से दूसरी में संक्रमित हो सकती है और वहाँ इस बीमारी के भयने मुक्त-यौन सम्बन्धों को कुछ हद तक सीमित भी

कर दिया है । गुजराती में एक कहावत है -- जे वार्यां न वरे, ते हार्यां वरे अर्थात् जो समझाने बुझाने पर नहीं समझते वे पराजित होकर अपने आप समझ जाते हैं ।

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में बदलाव एवं विघटन

वैयक्तिक चेतना एवं बुद्धिवादी अभिगम के कारण स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में से भावना व कर्तव्य का छेद उड़ गया हैं । उक्त प्रेम-विषयक विभावना भी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को खंडित करने में कारणभूत रही है । स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की इस परिवर्तित स्थिति को लक्ष्य कर डॉ॰ शांति भारद्वाज ने लिखा है -- "पति-पत्नी के स्थापित मूल्यों में विघटन हो रहा है । लोगोंने एक साथ अनेक रूपों में जीना सीख लिया है । बाहय और आंतरिक जीवन के बीच आज जितना फासला है उतना शायद उससे पूर्व कभी नहीं रहा ।"[30]

"अमृत और विषें की मिसेज माथुर अपने पति माथुर से उब जाती है और लच्छू से प्रेम करने लगती है । इस प्रेम-प्रदर्शन को नैतिक समर्थन देते हुए मि॰ तलवार कहते हैं -- "औरत और मर्द का मिलना एक शारीरिक जरूरत है । भूख की तरह सेक्सुअल अर्ज (कामेच्छा) भी एक कुदरती और शारीरिक जरूरत है और उसे पूरा करना ही चाहिये ।"[31]

महेन्द्र भल्ला के "एक पति के नोट्स" में भी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की निरर्थकता एवं खोखलेपनको उभारा गया है । नायक अपनी पत्नी सीता को इसका पता क्यों नहीं चलता । पता चलने लगता है तो मैं उसे फिर भ्रम में क्यों डाल देता हूं ।"[32] ऐसे अनेक प्रश्न नायक के मनमें कुल बुलाते हैं ।

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में व्यापक मानवीय आधार को ग्रहण करने के कारण अब परम्परागत पातिव्रत्य और सतीत्व की भावना निष्प्राण हो गई है । नवीनता एवं आधुनिकता का दम भरनेवाला "अन्धरे बन्द कमरे" का हरबंस पत्नी नीलिमा को नृत्य सीखने की स्वतंत्रता, तो प्रदान करता है, किन्तु परम्परागत विचारों से प्रेरित उसका पुरुष अहं नीलिमा के स्वतंत्र व्यक्तित्वको सहन नहीं कर पाता है । नीलिमा भी खा-पीकर तथा घूमकर संतुष्ट नहीं रह सकती । घरेलू जिन्दगी जीना उसे अभीप्सित नहीं है । पतिके लिए, उसके विलासके लिए, उसके अहं को पोषित करने के लिए महज़ एक चीज़ बनकर रह जाना उसे असहय है ।[33]

मोहन राकेश के उपन्यास "अन्तराल" की श्यामा का उसके पतिके मरने के बाद का विश्लेषण स्त्री-स्वातंत्य की भावना को उद्वेलित करता है -- "उस आदमी का एक लम्बी खामोशी में मेरे साथ डेढ़ साल काटकर चले जाना ····· वहीं अपने में इतना अनैतिक लगता है कि उसके बदले में अपनी किसी भी स्वच्छन्दता के लिए मैं अपने को क्षमा कर सकती है ।"[34]

भौतिकवादी दृष्टिकोण के बढ़ने से अब धर्म का हस्तक्षेप गौण होता जा रहा है । अत: अब स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में उनके निजी विकास को अवरुद्ध करनेवाली परम्पराओं व मान्यताओं का विरोध होने लगा है । अब ईश्वर और धर्म के स्थान पर मानव और अर्थ को महत्व मिलने लगा है, फलत: स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में अधिक उन्मुक्तता एवं स्वच्छन्दता पायी जाती है । भ्रूण हत्या से सम्बन्धित ईश्वरीय भय का अब लोप हो गया है । इससे सामाजिक संस्थाओं के प्रति अनास्था का भाव बढ़ गया है । फलत:

नर-नारी सम्बन्धों में परंपरागत नैतिक मान्यताएं अब शनै: शनै: परिवर्तित हो रही हैं । सामाजिक और आर्थिक संघर्ष से ग्रसित मध्यवर्ग की त्रस्तता एवं क्षुब्धता के सम्बन्ध में डॉ॰ चण्डीप्रसाद जोशी लिखते हैं --- "अत: नैतिक मूल्यों एवं जीवनगत आदर्शों के प्रति सबसे अधिक आस्थाहीन यही वर्ग था । बाहय संघर्ष मे अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अवसरवादिता उसका व्यावहारिक आदर्श बन गया तथा परिस्थितियाँ ही विश्व की संचालक शक्ति हैं, इसे उसने दर्शन मान लिया ।"[35]

विज्ञान, नारी-शिक्षा, स्त्रियों का आर्थिक स्वालंबन प्रभृति कारणों से पारिवारिक संस्था वैवाहित संस्था एवं परम्परागत धार्मिक मान्यताओं पर निरंतर प्रहार हो रहे हैं और सोच व चिंतन के नये प्रतिमान विकसित हो रहे हैं । फलत: पति-पत्नी के बीच चलनेवाली पातिव्रत्य और सतीत्वकी भावना में भी अन्तर आया है । नारी की पवित्रता का मापदण्ड अब केवल यौन-सम्बन्धों तक सीमित नहीं रह गया है । इन नवीन प्रतिमानों को लक्ष्य की डॉ॰ नेमिचन्द जैन लिखते हैं -- "व्यक्तिगत स्वाधीनता और व्यक्तित्व की अद्वितीयता जैसी अवधारणाओंका विस्तार अब हमारे देशमें केवल पुरुषों तक सीमित नहीं रह गया । उचित ही है कि स्त्री भी अपने व्यक्तित्व और उसकी रक्षा तथा प्रतिभाके प्रति सजग होती जा रही है । देशमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर नारी के व्यक्तित्वको अपेक्षाकृत भिन्न प्रकार की अभिव्यक्ति मिली है । पुरुषके साथ उसके सम्बन्धों के कई एक ऐसे आयाम उपन्यासों में चित्रित हुए हैं जो या तो पहले के उपन्यासों में थे ही नहीं या अपवाद मात्र थे या सर्वदा

प्रासंगिक और गौण थे ।"[36] "आपका बन्टी" की शकुन और "टेराकोटा" की मिति इसके उदाहरण हैं ।

नैतिक मूल्यों का पतन :

नगरीकरण की प्रक्रिया, औद्योगीकरण, विज्ञान व आधुनिक विचार धाराओं से उत्पन्न नवीन सोच व चिंतन के कारण धर्म एवं ईश्वर के प्रति अनास्था, वस्तुवाद की अतिरेकता प्रभृति कारणों से नैतिक मूल्यों का पतन होता चला है । किसी भी समाज व देश के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए स्वस्थ नैतिक मूल्योंका होना निहायत जरूरी है और वर्तमान युग में इन्हीं नैतिक मूल्यों का संकट सर्वाधिक रूप से देखने में आता है ।

कोई भी पति नहीं चाहता कि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध रखे, किन्तु "छाया मत छूना मन" में वसुधा का पिता वसुधा की माँ को अपने बॉस के पास एक रात छोडकर आ जाता है । उसकी नैतिकता में एक छेद उस दिन हो जाता है, फिर तो वह छेद निरंतर बढ़ता ही जाता है और एक दिन वह स्वयं अपनी बेटियों को उस रास्ते पर जाने के लिए प्रेरित करती है । वसुधा का पिता यह कार्य पदोन्नति के लिए करता है । कोई बहुत बड़ी आर्थिक विवशता यहाँ नहीं थी । इसी प्रकार "मुक्तिबोध" की नीलिमा भी अपनी सौन्दर्य राशि के चेक को अपने पति के पक्ष में जब तब भुनाती रहती है ।

पहले बेटियोंका पैसा माँ-बाप के लिए हराम था, परन्तु आजकल कुछ माँ-बाप अपनी बेटियों की शादी के लिए निश्चिंत हो जाते हैं क्योंकि शादी होने से बेटी की कमाई बन्द हो जायेगी इस बात की दहेशत उन्हें

खाये जाती है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा और "टेराकोटा" की मिति पर ही उनके परिवार का आधार है और दोनों को अपने-अपने परिवारों के लिए अवांछित कौमार्य धारण करना पड़ता है ।

डॉ॰ राही मासूम रज़ा के "आधा गाँव" में अब्बू मियाँ की लड़की सईदा अलीगढ़ पढने जाती है । शुरू शुरू में अब्बूमियाँ को यह अच्छा नहीं लगता, पर बादमें उसका पढ़ना और नौकरी करना अब्बूमियाँ को अखरता नहीं है । बेटीके पैसे वे नहीं लेते पर सईदा की माँ बेटी द्वारा खरीदे गए मातमी लिबास को पहनकर मजलिस में ठाठ से जाने लगी है ।

"काला जल" के रसूल मुंशी के यहाँ अब बड़ी रौनक है । कतार से मोमबत्तियाँ जल रही हैं और नायलोन की फ्राक में - ओढ़नी में उनकी बच्चियाँ चबूतरे पर धमाचौकड़ी मचा रही हैं, क्योंकि उनकी बड़ी लड़की इधर परदा छोड़कर ग्राम-सेविका की नौकरी करने लगी है और अक्सर जीपमें इधर-उधर घूमती-फिरती दिखती है ।[37]

"काला जल" का रज्जू मियाँ अपनी ही बहू (पुत्रवधू) पर डोरे डालता है । इसी उपन्यास की रसीदा पर उसके सगे चाचा की कुदृष्टि हैं । फलत: एक दिन उसे आत्महत्या करनी पड़ती है । महेरून्निसा परवेज के उपन्यास "कोरजा" में भी ऐसे कई किस्से मिलते हैं । इसी उपन्यासकी फातमा जब यौवन की दहलीज पर कदम रखती है तो उसके सगे बाप रहमानखाँ की कुदृष्टि उस पर पड़ने लगती है और बाप की कुदृष्टि से बेटी को बचाने के लिए उसकी माँ अरमान बी उसके हाथ जल्दी-जल्दी पीले कर देती है । अरमान बी की ननद की लड़की राबिया अपने ममेरे भाई जमशेद की वासना

का शिकार होती है । उससे रहे गर्भ को गिराकर वह अरमान बी के पास आ जाती है ।

स्त्री-पुरुष के अनैतिक सम्बन्ध तो सभी कालों में थोड़े-बहुत रहे हैं, परंतु पति स्वयं अपनी पत्नी की वासना पूर्तिकी व्यवस्था करे ऐसा बहुत कम देखने में आता है । "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" में नर्मदाबेन सेठानी का पति नर्मदाबेन की वासनापूर्ति नहीं कर सकता, अत: वह उसके लिए किराये के लोगों की व्यवस्था करता है ।

नैतिक मूल्यों के इस अध:पतन से हमें घोर सामाजिक सड़ाँध का अनुभव होने लगता है ।

व्यापक भ्रष्टाचार :

भ्रष्टाचार समाज को विकलांग बना देता है, आलोच्य काल के उपन्यासों में समाज के सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण हुआ है। भ्रष्टाचार पहले भी रहा होगा, किन्तु इधर उसका परिमाण दिन दुना रात चौगुना बढ़ रहा है । कोई क्षेत्र उससे अछूता नहीं रहा है ।

पुलिस तो इस विषयमें सदा सर्वदा बदनाम है ही, किन्तु पहले की अपेक्षा भ्रष्टाचार यहाँ खूब बढ़ गया है, और पहले जिस शर्म और झिझक का अनुभव हो रहा था, अब वह अदृश्य हो, रही है । तस्करों, सट्टोडियो और कालाबाज़ारियों से उसकी साठगाठ बढ़ गई है । जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के उपन्यास "मुरदाघर" में पुलिस में व्याप्त इस भ्रष्टाचार की कलई खोली गई है । इसमें यह भली भाँति बताया गया है कि दारू बेचनेवाले, बरली-मटकावाले तथा तस्करी में पड़े हुए लोग पुलिस द्वारा संरक्षित हैं । पुलिसकी

"रेड" होने से पहले उन्हें खबर मिल जाती है, क्योंकि उनकी किश्तों से ही पुलिस का कारोबार चलता है । स्मगलरके यहाँ चोरी करनेवाले को पुलिसके अमानुषी अत्याचारों से गुजरना पड़ता है । उपन्यास के एक पात्र नत्थू के शब्दों मे -- "किधर भी चोरी करना पन इस्मगलर •••दारूवाला•• •••••• रंडीवाला•••••• इधर कभी भूलके भी नहीं जानेका । नई तो पोलिस जान से मार डालेगा मार-मार के । कभी नहीं छोडेगा ••••• सारा पोलिस खाना इधर से चलता ।"[38]

मन्नू भण्डारी के उपन्यास "महाभोज" में सरकार और पुलिसकी सौठगांठका पर्दाफास किया गया है । हरिजन- युवक बीसू की हत्या प्रदेश के मुख्य-मंत्री दासाहब के खास आदमी जोरावर के द्वारा की जाती है । बीसू की यह हत्या भी एक सामान्य घटना बनकर रह जाती, पर सरोहा के उपचुनाव के परिणामस्वरूप उसमें भी राजनीतिक सरगर्मी आ जाती है । विपक्षों का मुँह बन्द करनेके लिए दासाहब एक उच्च स्तरीय पुलिस जाँच का आदेश देते हैं । डी• आई• जी• सिन्हा साहब इसे आत्महत्या का स्वरूप देते हैं । जाँच के पहले ही निष्कर्ष निकाल लिया जाता है और उसी निष्कर्ष को लेकर फर्जी जाँच के लिए एस•पी• श्री सक्सेना को भेज दिया जाता है । सक्सेना भी पहले तो सिन्हा के बताए रास्ते पर चलता है, पर रिसर्च प्रोजेक्टवाले महेशबाबू और बिसू के अभिन्न साथी बिन्दा को मिलने पर जाँच की दिशा बदल जाती है । हत्या का सूत्र जोरावर की तरफ़ जाता है । फलत: सक्सेना को वापिस बुला लिया जाता है -- पहले तबादला और फिर नौकरी से निलम्बित । बीसूकी हत्या के आरोप में उसके ही साथी बिन्दा को पकड़ लिया जाता है ।

तर्क यह दिया जाता है कि "चतुर अपराधी हो सबसे अधिक आक्रमक मुद्रा अपनाता है ।"[39]

नागार्जुन के उपन्यास "इमरतिया" में धर्म और पुलिस के गठबंधन की बखिया को उधेड़ी गई है । जमनिया के बाबा का सारा ठोंग-ठकोसला पुलिस के दम-खम पर चलता है । मठकी एक सधुआइन लक्ष्मी को महन्त से गर्भ रहता है । इस बात पर पर्दा डालने के लिए बाद में उस बच्चे की बलि दी जाती है । पुलिस केस न हो इसलिए मठकी एक सधुआइन गौरीको भरतपुराके थानेदार को प्रसन्न करने के लिए भेज दिया जाता है । गौरी उसके साथ चार दिन रहती है । लेखक ने इसका बड़ा व्यंग्यात्मक चित्र खींचा हैं -- "भरतपुराकी पुलिसके रिकोर्ड में दर्ज हुआ होगा -- पूजा की आठवीं रात में जाने किधर से एक पगली आई । उसकी गोदमें छः महिने का बच्चा था । पुजारी की नज़र बचाकर उसने बच्चे को हवन-कुण्ड में डाल दिया । सरकार बहादुर से अर्ज है कि वह जमनिया मठ के सन्त शिरोमणि बाबाजी महाराजकी प्रतिष्ठा और इज्ज़त को ध्यान में रखें ।"[40]

पुलिसमें यह भ्रष्टाचार इसलिए भी पनप रहा है कि हमारी राज्य व्यवस्था एवं शासन प्रणाली की बागडोर भ्रष्ट से भ्रष्ट लोगों के हाथों में चली गई है । "काला जल" के मोहसिन का हमारी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर यह आक्रोश कितना सटीक जान पड़ता है : "सन् सैंतालीस के पन्द्रह अगस्त के बाद वैसे लोगोंकी बाढ़ आ गई है । ..... हर ईमानदार आदमी या तो उन पर हँसता है या अपना ही माथा पीट लेता है । बताओ क्या यह रोने का मकाम नहीं है कि सचमुच त्याग और बलिदान के

समय जो नौकरी या अपनी प्रतिष्ठा की आड़ लिए सिर छिपाए बैठे थे, वे गांधी-टोपी ओढ़कर पाप धो बैठे और आज नेता, सरपरस्त तथा देशभक्त हैं और मिनटों मे हम लोगों का भाग्य बना-बिगाड़ सकते हैं ।"[41] "महाभोज" में मुख्यमंत्री दासाहब के इशारे पर चलनेवाले डी॰आई॰वी॰ सिन्हा साहब को प्रमोशन मिलता है । सत्यान्वेषी एस॰पी॰ सक्सेना को नौकरी निलम्बित किया जाता है । "सबहिं नचावत राम गोसाईं" के पुलिस अधिकारी रामलोचन पाण्डे को नौकरी से त्याग पत्र देना पड़ता है क्योंकि प्रदेशके गृह-मंत्री श्री जबरसिंह के मित्र सेठ श्री राधेश्याम को वह तस्करी के अभियोग में गिरफ्तार कर लेता है । पूंजी और सत्ताका यह गठबन्धन ही भ्रष्टाचार का उत्स है ।

"राग दरबारी", "जहर चाँद का" तथा "यह भी नहीं" प्रभृति उपन्यासों मे' शिक्षा-जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार को चित्रित किया गया है । शिक्षा विभाग तो समाज के फेफड़े हैं । समाज के अन्य अंग विकृत होंगे तो शिक्षा द्वारा उनका सुधार हो सकता है, परन्तु जहाँ शिक्षा में ही धुन लगी हो, वहाँ क्या हो सकता है ? मोहन राकेश का यह व्यंग्य कितना सटीक है कि अध्यापक के व्यवसाय को कुछ लोगों ने दो मंजिला मकान बनाने का साधन समझ लिया है ।[42]

"अंतराल" के प्रोफेसर मलहोत्रा तथा मिस रोहनगी रात-दिन यूनिवर्सिटी पालिटिक्स में रचे-पचे रहते हैं । मलहोत्रा का श्यामा के साथ का दुर्व्यवहार, आर्ट्स कॉलेजके अंग्रेजी के अध्यापक गोपालजी का श्यामा के प्रति काम-लोलुप व्यवहार, भण्डी स्कूलकी अध्यापिकाओं की बातों के विषय तथा उनमें प्रच्छन्न उनकी दमित वासनाएँ प्रभृति बातें शिक्षा-जगत के

कुत्सित एवं घृणित परिवेश को उजागर करते हैं । वैसाखियोंवाली इमारतें की हिन्दीकी प्रोफेसर मिस जायसवाल पान सुपारी की तरह अपने शरीरको पेश कर "बोल्डनेस" का दम भरती है । बैचलरों की अपेक्षा वह विवाहित लोगों को अधिक पसन्द करती है, क्योंकि दूसरों के दाम्पत्य-जीवनमें आग लगाने से कदाचित् उसकी "सैडिस्ट" प्रकृति को संतोष होता है । "रेखा" उपन्यास के प्रोफेसर डॉ॰ प्रभाशंकर को भी लडकियों के शिकार का शौक हैं ।

जातिवाद की समस्या :

जातिवाद की संकुचित भावना के कारण व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी जाति के सदस्यों को ही प्राथमिकता देने को तत्पर रहता है । जातिवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ॰ के॰एन॰ शर्मा ने लिखा है : "जातिवाद या जाति-भक्ति एक ही जाति के व्यक्तियों की यह भावना है जो देशके या समाज के सामान्य हितों का ख्याल न रखते हुए केवल अपनी जाति के सदस्यों के उत्थान, जातिय एकता और जाति की सामाजिक प्रस्थिति को दृढ़ करने के लिए प्रेरित करती हो ।"[43]

शहरों में खानपान और छुआछूत वाला जातिवाद तो कम देखने में आता है, पर शादी ब्याह, नौकरियाँ और राजनीतिक संगठनों में - चुनावों में जातिवाद के आधारों को ग्रहण किया जाता है ।

"सबहिं नचावत राम गोसाईं" में जातिवाद के आधार पर होनेवाले चुनावों का चित्रण मिलता है । ठाकुरों के मतों को ध्यान में रखकर ही जबरसिंहको टिकट मिलता है । प्रश्न और मरिचिका मे भी भारतीय

राजनीति में जातिवाद के प्रभाव को रेखांकित किया गया है । मुसलमान वोटों के बटोरने के लिए ही एक समयके मुस्लिम लीगी मुस्तका कामिल को कांग्रेस में अग्रता दी जाती है । इसी प्रकार बिन्देसरी की टिकट का आधार भी जातिवाद से पोषित है ।

"गोबर-गणेश" का विनायक एक दक्षिणी लड़की शातम को प्रेम करता है और उससे शादी भी करना चाहता है, परंतु लड़की का पिता एक आई॰ सी॰एस॰ आफिसर होने के बावजूद अपनी लड़की को जाति के बाहर देने के लिए तैयार नहीं है, फलत: दोनों का विवाह नहीं हो सकता । "प्रश्न और मरीचिका" का उदयराज एक मुसलमान लड़की से विवाह करना चाहता है, उसके लिए कानूनी कारवाही भी कर लेता है, किन्तु मुस्तफा कामिल जैसे जातिवादी व्यक्ति के प्रयत्नों के कारण वह बुरी तरह असफल रहता है । डॉ॰ राही मासूम रज़ा के उपन्यास "टोपी शुक्ला" के "टोपी" अर्थात् बलभद्र नारायण शुक्ल की शादी भी सकीना से इसीलिए नहीं हो सकती ।

दहेज की समस्या भी जातिवाद से जुड़ी हुई है । लोग अपनी जाति से बाहर जाना नहीं चाहते, फलत: उन्हें दहेज के लिए विवश होना पड़ता है । कई बार दहेज न जुटा पाने के कारण लड़कियाँ कँवारी भी रह जाती हैं, तो कई बार कुपात्र के सुपुर्द कर दी जाती है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा के अविवाहित रह जाने का एक कारण यह भी है । पृथ्वीराज मोंगा के उपन्यास "काँच का आदमी" में नायक सुरेश की बड़ी बहन कमला धीर-गंभीर, सर्वहारा, सेवापरायण और विवेकपूर्ण है, किन्तु दरिद्रता के कारण उसका विवाह उसके पिता रामलाल नामक एक अयोग्य एवं अशिष्ट

व्यक्ति से कर देते हैं । शादी-ब्याह के सम्बन्ध में जातिवाद का उल्लंघन केवल उच्चवर्गीय एवं आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर लोगों में ही पाया जाता है । जातिवादी भावना का सर्वाधिक शिकार मध्यवर्ग ही हुआ है । अनमेल ब्याहकी समस्या भी इसीके साथ जुड़ी हुई है । उक्त उदाहरण में कमला जैसी सुशील लड़की की शादी रामलाल जैसे नितान्त अयोग्य व्यक्ति के साथ होती है । यदि जातिकी दीवार न होती तो उसे दूसरा कोई अच्छा वर मिल सकता था ।

कौमी - समस्या :

भारत में हिन्दू-मुसलिम बैमनस्यता अंग्रेजोंकी नीति का परिणाम है और आज़ादी के इतने वर्षों में उसमें निरंतर वृद्धि होती गई है । यह ज़हर हमारे राष्ट्रीय जीवन में इतना फैल गया है कि बात-बात पर कौमी-फ़साद व दंगे हो जाते है । यहाँ डॉ॰ पास्कांत देसाई का यह विचार ध्यातव्य है : "द्वितीय विश्वयुद्ध में हुए अणु-विस्फोटने जापान के दो शहरों को न केवल भस्मीभूत कर दिया, बल्कि आनेवाले अनेक वर्षों तक उन्हें विकलांग और विकृत बना दिया । भारत-पाकिस्तान का विस्फोट भी एक ऐसा ही विस्फोट है जिसने आनेवाली अनेक पीढ़ियों के मानस को विकलांग और विकृत कर दिया है । भारतीय मुसलमान चाहें जितने राष्ट्रीयता के दावे करें या राष्ट्रीय बनें, इस देशमें सदा ही उनका चरित्र संदिग्ध बना रहेगा ।"[44] उपन्यास "काला जल" के मोहसिन के इस कथन में शानी की ही बेलाग और बेबाक निखालसता मानो टपक रही है : "यहाँ ज़िन्दगी भर बीच के आदमी बने रहोगे, न इधरके न उधरके ।"[45]

डॉ॰ राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास "टोपी शुक्ला" में "हिन्दू-मूसलिम भाई-भाई" के नारे का मखौल उड़ाते हुए लिखा है कि -- "क्या मैं रोज़ अपने बड़े या छोटे भाई से यह कहता हूँ कि हम दोनो भाई-भाई हैं ? यदि मैं नहीं कहता तो क्या आप कहते हैं ? हिन्दु-मुसलमान अगर भाई-भाई हैं तो कहने की जरूरत नहीं । यदि नहीं है तो कहने से क्या फ़र्क पड़ेगा ।"[46] इसी उपन्यास में इसी हिन्दू-मुसलिम मानसिकता को लेकर आक्रोश भरे शब्दोमें कहा गया है -- "यह प्रश्न वास्तवमें महत्वपूर्ण है कि बलभद्र - नारायण शुक्ला और उन्हीं के जोड़ीदार किसी अनवरहुसेन जैसे लोगों के लिए इस देशमें कोई जगह है या नहीं । यहाँ कुंजड़ों, कसाइयों, सय्यदों, जुलाहों, राजपूतों, मुसलिम, राजपूतों, बारह सैनियों, अगरवालों, कायस्थों, ईसाइयों, सिक्खों .... गरज कि सभी के लिए कम या अधिक गुंजाइश है । परन्तु हिन्दुस्तानी कहाँ जायें ? लगता ऐसा है कि ईमानदार लोगों को हिन्दू-मुसलमान बनाने में बेरोजगारी का हाथ भी है ।"[47]

इसीलिए टोपी कहता है -- "जिस देश की यूनिवर्सिटी में यह सोचा जा रहा हो कि गालिब सुन्नी थे या शीआ और रसखान हिन्दू थे या मुसलमान, उस देशमें पढ़ानेका काम नहीं करूँगा ।"[48]

तस्वीरका दूसरा रूप भी इसमें रज़ाने बताया है । मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति नफ़रत कैसे बढ़ायी जा रही है । उसका एक चित्र डॉ॰ ज़ाहिद अंजुम के चरित्र में मिलता है । डॉ॰ अंजुम अलीगढ़ यूनिवर्सिटी की एक छात्रा सलीमा से शादी करते हैं । "परन्तु यह शादी इस आसानी से नहीं हो गयी । सलीमा से शादी करने के लिए डॉक्टर साहब को पाकिस्तान

जाना पड़ा । वहाँ जाकर उन्हें यह कहना पड़ा कि कश्मीर पाकिस्तान का है और भारत की आबादी के आँकड़े झूठ बोलते हैं कि भारत में पौने पाँच करोड़ मुसलमान हैं । भारत के तमाम मुसलमान दंगों में मारे जा चुके हैं, जो बच रहे हैं उनकी शुद्धि करायी जा चुकी है ।"[49]

फलत: डॉ॰ अंजुम पाकिस्तानकी किसी यूनिवर्सिटीमें वाइस चासलर हो गये । इधर सलीमा भी टोपी से अपना थीसिस लिखवा चुकी थी, इसलिए डॉक्टर साहब और सलीमा की शादी में कोई रूकावट नहीं रह गयी । प्रेमचन्द अमरकान्त और सकीना की शादी नहीं करवा सके, रज़ा टोपी और सलीमा की शादी नहीं करवा सके ।

भारत में हिन्दू-मुसलिम दंगे कैसे शुरू हो जाते हैं उसका भी एक चित्र लेखक ने दिया है । सकीना की बातको लेकर टोपी एक दादा से भीड़ जाता हैं । दादा टोपी पर चाकू चला देता है । टोपी को जब होश आता है, तब वह अस्पताल में होता है । परन्तु इसी बीच अफ़वाओं का बाज़ार गर्म होने लगता है । एक छोटी-सी घटना बलवे में बदल जाती है और फिर यह दंगा सारे यू॰ पी॰ में फैल जाता है । मेरठ, शाहजहाँपुर, बरेली, हाथरस, खुर्जा सब जगह दंगा हो जाता है । रज़ाने इसका अंकन दर्द के साथ किया है -- "लाश । यह शब्द कितना घिनौना है । आदमी अपनी मौतसे, अपने घरमें अपने बाल-बच्चों के सामने मरता है तब भी बिना आत्माके उस बदन को लाश ही कहते हैं । और आदमी सड़क पर किसी बलवाई के हाथों मारा जाता है, तब भी बिना आत्मा के उस बदन को लाश ही कहते हैं । भाषा कितनी गरीब होती हैं । शब्दों का कैसा जबरदस्त

काल है । कितनी शर्म की बात है कि हम घर पर मरनेवाले और बलवे में मारे जानेवाले में फर्क नहीं कर सकते, जबकि घर पर केवल एक व्यक्ति मरता है और बलवाइयों के हाथों परम्परा मरती है । जायसी की पद्मावती मरती है । कुतुबन की मृगावती मरती है, सूरकी राधा मरती है । वारिस की हीर मरती है । तुलसी के राम मरते हैं । अनीस के हुसैन मरते हैं । कोई लाशों के इस अम्बार को नहीं देखता । हम लाशें गिनते हैं । सात आदमी मरे । चौदह दुकानें लुटीं । दस घरों में आग लगा दी गयी । जैसे कि घर, दुकान और आदमी केवल शब्द हैं जिन्हे शब्दकोशों से निकाल कर वातावरण मे मँडराने के लिए छोड दिया गया है ।"[50]

भीष्म साहनी के उपन्यास "तमस" में भी हिन्दू-मुसलिम दंगों की मानसिकता का यथार्थ अंकने हुआ है । उपन्यास के प्रारंभ में मुरादअली नामक एक व्यक्ति नत्थू चमार को पाँच रूपये देकर सूअर मरवाता है । बादमें यही सूअर मस्जिद के सामने डलवा दिया जाता है और शहरमें दंगा हो जाता है । दंगों के समय यह ज़हर लोगों के और गहरे तक उतर जाता है कि विवेक बुद्धि रखनेवाले शांत-सौम्य व्यक्तियों के मानस भी विषाक्त होने लगते हैं जो हम शाहनवाज़ के किस्से में देख सकते हैं ।[51]

दंगों के वातावरण में हिन्दू और मुसलमान दोनों आमने-सामने आनेका साहस नहीं कर पाते । इक्के-दुक्के निर्दोष - कई बार बूढ़े लागों पर वार करके अपनी धार्मिकता और खिदमत के तमगे बटोरते हैं । इब्राहीम इत्रफरोश की मौत इसका एक अच्छा उदाहरण है -- "यह आदमी म्लेच्छ था, अज़नबी था, थैलों से लदा था, न भाग सकता था, न अपने को बचा सकता था, और थका हुआ था । सभी गुण मौजूद थे ।"[52] ऐसे आदमी की हत्या करके

रणवीर, इन्द्र, शम्भू आदि अपनी वीरता प्रदर्शित करते हैं। वास्तव में यदि धर्म के नाम पर शहीद होने की नौबत आवे तो शायद इनमें से सभी भाग खड़े हो जायें। इन्द्र जब इत्रफरोश के पीछे-पीछे जाता है, तब वह बेचारा सोचता है कि कोई लड़का डरका मारा उसके साथ-साथ चल रहा है। उसे क्या मालूम कि उसके पेटमें दाढ़ीवाला बैठा है और मौका मिलते ही इन्द्र उस पर प्रहार कर देता है।

बलदेवसिंह बूढ़े लुहार करीम बख्श के सीने में तलवार भोंक आता है, क्योंकि वह सोचता है कि बलवाइयोंने उसकी बूढ़ी माँ को मार डाला होगा। कैसा बहशीपन। माँ को मारनेवाले से भिड़ने का दम नहीं है, इस लिए विपक्षी के ऐसे ही किसी असहाय बूढ़े की हत्या की जाती है। माँ-बहनों की इज़्ज़त सरे आम लूटी जाती है। मूर्दे के साथ भी बलात्कार किए जाते हैं। और जब बलवा दबा दिया जाता है, तब वही मुरादअली शांति की अपील करता हुआ दिखाई पड़ता है।

मध्यवर्गीय प्रदर्शन प्रियता :

यह मध्यवर्ग अनेक सामाजिक समस्याओं की जड़ है। उच्च वर्ग तो नियामक है। उसे किसी की परवाह नहीं। निम्न वर्ग भी बेफिक्र है। अत: मूल्यों का सारा बोझ इसी मध्यवर्ग पर आता है, परिणामस्वरूप इसी मध्यवर्ग में प्रदर्शन की वृत्ति सर्वाधिक रूपसे मिलती है। इसी प्रदर्शन वृत्ति और झूठी शान के चक्कर में वह कई बार भ्रष्ट तरीकों को अपनाता हैं। मध्यवर्ग के नैतिक अध:पतन का एक कारण यह भी है।

उषा प्रियंवदा के उपन्यास "रुकोगी नहीं राधिका ·····। की राधिका जब अमरिका से आती है, तब उसकी भाभी उसके स्वागत में अति उत्साह से काम लेती है इसके मूलमे भी यही प्रदर्शन-वृत्ति है । वह राधिका को सभा-सोसायटी में ले जाकर "फोरिन रिटर्न" ननद के अपने अहं की तुष्टि चाहती है ।[53] विद्याकी बहन रमा को इस बात का बड़ा रंज है कि राधिका विदेश से केवल कुछ किताबें, कुछ रंग और तस्वीरें ही लेकर आयी है ···· न छाते, न घडियां, न लिपस्टिकें, न ट्राजिस्टर ।[54] इसी प्रकार उत्तरी भारत में रहनेवाले प्रवीण को हिन्दी बोलने की आदत के छूट जानेका तथा अपने बच्चोंको अंग्रेजीके अतिरिक्त अन्य किसी भारतीय भाषा के नहीं आनेका मलाल नहीं बल्कि गर्व है । यह भी प्रदर्शन वृत्ति का परिणाम है ।

डॉ॰ राही मासूम रज़ा के उपन्यास "दिल एक सादा कागज" में इस प्रदर्शन वृत्तिका अच्छा खाका खींचा गया है । "स्वतंत्रता के बाद जो नया नौकरी-पेशा वर्ग उभरा है, वह अपने आपको पढ़ा-लिखा समझने लगा है । ड्राइंग-रूमों में किताबें सजाता है और साहित्यकारों को पेट्रोनाइज़ करता है । शामको महफिलें सजाता है । बीवियाँ और बेटियाँ व्हिस्की के गिलास लेकर साथ बैठती हैं और सार्त्र के "पेटलिस्ट एटिप्युड" और आस्कर वाइल्ड की "साडोमी" पर बहस करती हैं । आधुनिक अमेरिकन लिट्रेचर की बात करती हैं । इविंग वालेस, ल्यान, अरिस, मारियो पूज़ो ·····और ग़ालिब पर सर धुनती है" । जो मिस या मिसेज नहीं आयी है उसके वार्डरोब और ड्रेसिंग टेबिल का मज़ाक उडाती है और स्कैन्डल्ज़ के थान ··· के···थान बुनती हैं ।"[55]

बीफ़ पसन्द हो और कोई खाए यह अलग बात है, परन्तु यहाँ बीफ इसलिए खाया जाता है कि कोई उन्हें "बैक वर्ड" या "रिएक्शनरी" न समझे । "कई घरोमें अपना सेकुलरइज्म साबित करनेके लिए "बीफ" पकता और "मिसेज उसके कानमें कहती "बीफ है ।" वह गरदन हिला देता । "मेरे घरमें तो लेहसन-प्याज़ भी नहीं खाते । पर मैं इन बातों को नहीं मानती । मीट तो बीफ़ ही का होता है ... ।"[56]

इस उपन्यासमें वर्णित जवाहरनगरमें "ब्राड माइन्डनेस" की एक दौड़ हो रही है । बेलबाटम, एलिफन्ट, ट्राउज़र जीन्ज । हिप्स्टर साडियाँ, ऊँची चौलियाँ, स्पोर्ट शर्ट, टेनिस, बैडमिन्टन, स्वीमिंग, स्टीरियो फोनिक म्युज़िक । अली अकबर, रविशंकर, फ़ैय्याज खाँ, बडे गुलामअली खाँ महदी हसन । "और इन्क्रीमेंटो, नौकरियों, ओहदों तनख्वाहों के गज से आदमी को नापनेवाले लोग अपने चेहरों पर नक़ाब डाले फ़ैज़की नज़्म और नूरजहाँ की आवाज़ सुन रहे थे ।"[57] क्योकि गालिब के बाद फ़ैज़ ही सबसे बड़ा फ़ैशन हैं ।

इस प्रकार दूसरों की देखादेखी करने से आदमी अपनी हैसियत के उपरांत खर्च करता है, जिसे पाटने के लिए उसे भ्रष्ट तरीकों का उपयोग करना पड़ता है । फलत: समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है ।

उच्चवर्गीय खोखलापन :

हमारा मध्यवर्ग उच्च-वर्ग का अनुसरण कर रहा है, और उच्च-वर्ग पश्चिमी जीवनकी ताम-झाम से प्रभावित है । पश्चिम में वस्तुवादी चेतना ने मानवीय जीवन को भीतरसे खोखला कर दिया है । हमारे समाज के

उच्च-वर्ग में भी यह भीतरी खोखलापन दृष्टिगोचर होता है ।

उच्च-व्यावसायिक वर्गके लोग, राजा-महाराजा, उच्च राजनीतिक वर्ग (आधुनिक राजा-महाराजा) तथा उच्च वर्ग के सरकारी अधिकारीयों से वह वर्ग बनता है । डीनर पार्टियाँ, कॉकटेल पार्टियाँ, नाइट-क्लब, कैबरे, ब्ल्यू फिल्म, काल गर्ल आदि में उनकी दुनिया आबाद है ।

"मछली मरी हुई" की कल्याणी कालगर्ल का काम करती है । प्रिया कल्याणी की लड़की है । शीरीं की सोबत में वह लिस्वियन हो जाती है । निर्मल पद्मावत् जब प्रियाके साथ बलात्कार करता है तो प्रिया के पिता डॉ॰ रघुवंश को इस बात की खुशी होती है कि इस प्रकार प्रियाकी जातीय असाधारणता दूर हुई ।

कई बार कुछ अधिकारियों से काम निकालने के लिए उन्हें महँगी होटलों में ठहराया जाता है, जहाँ उन्हें हर प्रकारके विलासिता के सामान उपलब्ध कराये जाते हैं । "नदी फिर बह चली" में एक उच्च अधिकारी ऐसे ही होटलमें ठहराया जाता है । खाने-पीने के बाद, उसके यह कहने पर कि "हमारे लिए जो चीज़ मंगायी है, उसे पेश किया जाय" उसके कमरे में एक रूप-सुन्दरी को भेज दिया जाता है । आश्चर्य की बात कि वह युवती उस अधिकारी की ही पत्नी थी । होटल के अधिकारियों से जवाब-तलब करने पर उन्हों ने बताया कि वह युवती पिछले दो-तीन महीनों से उस पेशे में थी ।[58] "डाक बंगला" के मि॰ बतरा का व्यवसाय ही अधिकारियों से मिलकर लोगों का तथा अपना काम बनाना है, और इसके लिए प्रत्येक अधिकारी की नब्ज़ को वह भली भाँति जानता है ।

"एक चूहे की मौत" में उच्च अधिकारियों की रंगीन सोसायटियों का पर्दाफास किया गया है । महानगरों के उच्च-समाज में "की-क्लब" चलते हैं । क्लब के सभी सदस्य अपनी पत्नियों या प्रेमिकाओं को लेकर आते हैं । सब अपनी-अपनी गाडियोंकी चाबियाँ एक स्थान पर रख देते हैं । उस पर एक कपड़ा डाल दिया जाता है । फिर सभी सदस्य एक-एक करके चाबी उठा लेते हैं । जिसके हाथमें जिसकी चाबी आवे, उसकी पत्नीको लेकर सभी अलग-अलग कमरों में चले जाते हैं ।[59]

शैलेश मटियानी कृत "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" में लेखकने बम्बई के भद्र-वर्ग के आंतरिक व नैतिक खोखलापन को बखूबी चित्रित किया है । सेठानी नर्मदाबेनकी वासनापूर्ति सेठ नगीनदास नहीं कर सकते । पर इसका बड़ा "सोफ़िस्टीकेटेड" तरीका सेठानी ने सेठकी सहायता से ही ढूँढ निकाला है । धर्मशाला, अनाथालय, मन्दिर, स्कूल आदिमें व्यवस्थापक, पूजारी व पिंसिपल सी नियुक्ति सेठानीजी करती हैं । इसके अतिरिक्त सेठों के संरक्षण में चलनेवाले "कवि-सम्मेलनों" से भी वह यथेच्छ "शिकार" को फँसा लेती है ।

यह उन्मुक्तता, यह स्वच्छन्दता, यह यौनाचार प्रथम व्यक्ति के जीवन को और तदन्तर सामाजिक जीवनको खोखला बना देते हैं ।

शिक्षित अविवाहित महिलाओंकी समस्या :

स्त्री-शिक्षा ने जहाँ स्त्रियों को आत्म निर्भर, स्वाभिमानी और पुरूषों के अत्याचारों से कुछ हद तक मुक्त किया है, वहाँ कुछ नयी समस्याएँ भी पेदा की हैं । आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ नौकरी करती हैं । उनकी यह नौकरी ही कई बार उनके शोषण का कारण बन जाती है ।

शुरू में माँ-बाप उसके पैसे लेने में झिझक का अनुभव करते हैं । फिर मनको इस प्रकार शांत्वना दी जाती है कि इन पैसों से उसका दहेज जुटाया जायेगा । परन्तु घरकी छोटी-मोटी जरूरतों में पैसे खर्च हो जाते हैं और शनै: शनै: बेटीकी कमाई घरकी एक आवश्यकता हो जाती है । तब माँ-बाप या अभिभावकों में एक स्वार्थीवृत्ति का उदय होता है और वे बेटी की शादी की ओर से कुछ कुछ निश्चिंत से हो जाते हैं । शुरू-शुरू में तो लड़की को अच्छा लगता है, क्योंकि घरके सभी सदस्य उसे कमानेवाली लड़की के नाते अतिरिक्त महत्व देते हैं । पर धीरे-धीरे अन्य भाई-बहन अपनी घर गृहस्थी में खो जाते हैं, माँ-बाप मर-खप जाते हैं या अत्यंत असहाय हो जाते हैं, तब एक भयावह एकलता उसे खाने दौड़ती है । दिशाएँ भायें भायें करती है । उसे अपना अस्तित्व बेमानी व निरर्थक प्रतीत होने लगता है और तब एक भयंकर Frustration आशाभंग या विफलीकरण की कुंठा के दौर से उसे गुज़रना पड़ता है ।

"पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा, "टेराकोटा" की मिति", "छाया मत छूना मन" की वसुधा, "डाक बंगला" की इरा आदि ऐसी ही शिक्षित नौकरीशुदा महिलाएँ हैं जो बाहर-भीतर से टूट रही हैं । उनकी यह टूटन उनमें अनेक कुण्ठाएँ एवं विकृतियाँ पैदा कर सकती हैं । मोहन राकेश के उपन्यास "अन्तराल" में उसका कुछ संकेत दिया गया है ।

खंडित दाम्पत्य-जीवन की समस्या :

वस्तुवादी चेतना, वैयक्तिक चेतना, स्त्री-शिक्षा, वुमन-लिब-प्रवृत्ति, यौन-उच्छृंखलता, स्त्री पुरुष के अहंकी टकराहट, पश्चिम की गलत बातों का

भी अन्धानुकरण प्रभृति कारणों से नगरों और महानगरों में स्त्री-पुरूषके दाम्पत्य-जीवन खंडित हो रहे हैं ।

मन्नू भण्डारी के उपन्यास "आपका बन्टी" में अजय और शुकन के अहं की टकराहट विवाह-विच्छेद में परिणत होती है । दोनों के विचारों में कोई मेल नहीं है । पुरानी स्थितियों में स्त्री दबती थी, समझौता कर लेती थी, परंतु यहाँ शुकन तो उच्च-शिक्षा प्राप्त एक स्कूल की प्रिंसिपल है । वह भला क्यों दबती । फलत: दोनों के बीच की वैवारिक दरार निरंतर बढ़ती ही जाती है और वकील चाचा के भरसक प्रयत्नों के बावजूद विवाह-विच्छेद हो जाता है ।

"अन्धेरे बन्द कमरे" की नीलिमा और हरबंस का दाम्पत्य भी विच्छेद के कगार पर खड़ा है । आधुनिकता के मोहमें हरबंस पहले तो नीलिमा को अल्ट्रा-मोडर्न होने की ट्रेनिंग देता है । उसे नृत्यका प्रशिक्षण दिलवाता है । उसकी हर अभिरूचि का ध्यान रखता है, परन्तु बादमें वह उसके स्वतंत्र व्यक्तित्वको बरदास्त नहीं कर सकता । उसे यह अपमानजनक लगता है कि लोग उसे नीलिमा के पति के रूपमें जाने । फलत: दोनों के बीच की खाई बढ़ती जाती है ।

भीष्म साहनी कृत "कडिया" की समस्या "अन्धेरे बन्द कमरे" के विलोभ पर है । यहाँ पत्नी प्रमिला प्राचीन परम्पराओं मे आस्था रखनेवाली, घर और बच्चों में खोयी रहनेवाली, एक गृहिणी है । सौन्दर्य उसमें है, पर वह उसका प्रदर्शन नहीं कर सकती । सेक्स के प्रति उसका दृष्टिकोण स्वस्थ या आधुनिक नहीं कहा जा सकता । उसकी शिक्षा-दीक्षा तथा वातावरण ने उसमें सेक्सके प्रति एक विरक्ति-सी पेदा कर दी थी ।

उसके पति महेन्द्र की आँखें आधुनिक जीवनकी चमक-दमक से चौंधिया गई हैं । अत: वह अपने ही दफ्तरकी एक आधुनिक महिला सुषमा के प्रति आकर्षित होता है । प्रमिला को सुषमाकी भाँति यह "डायलोग" मारना भी नहीं आता कि "तुम्हारे वक्त से जो घड़ियाँ टूट कर मेरी गोद में पड़ जाएँ मैं उन्हीं से सन्तुष्ट हूँ ।"[60] उसकी सहेली सतवन्त-सी व्यवहार कुशलता भी उसमें नहीं है । पति से भी ज्यादा वह अपने बेटे पप्पू का ख्याल रखती है । और परिणामस्वरूप पति व बेटे दोनों से हाथ धो बैठती है । अन्य क्षेत्रों की भाँति दाम्पत्यके क्षेत्रमें भी अब स्पर्द्धा है । इस "शो-मेन-शीप" के जमाने में आधुनिक पतिके मनको जीतने के लिए स्त्रीको पतिव्रता नहीं, अपितु "अप-टु-डेट" होना पड़ता है । प्रमिला यह नहीं कर सकी, उसमें उसके दाम्पत्य की कड़ियाँ एक बार टूटीं "तो फिर कभी नहीं जुड़ सकी" ।

दिप्ति खंडेलवाल के उपन्यास "कोहरे" की स्मिता-सिमी एक आधुनिक है । सुनीलका "ग्रीक-गोड" जैसा शारीरिक सौष्ठव उसके तन-मनको भींगा जाता है । सुनील भी स्मिता के मोनालीज़ा-से रूप पर रीझ जाता है, पर उनका यह दाम्पत्य-जीवन भी कुछ वर्षों से अधिक नहीं चलता । सुनील का अहं एवं एकाधिकार की भावना स्मिताको भीतर तक आहत कर देते हैं । सुनील स्वयं तो अनेक स्त्रियों के साथ नाचना है, परन्तु वह स्मिता को किसी पुरूष की बाँहों में नहीं देख सकता । एक बार स्मिता सुनील को सरप्राइज देने के लिए रेडियो के एक संगीत प्रोगेम में सम्मिलित होती है । सुनील को यह बात बहुत अखर जाती है । उनके दाम्पत्य-जीवन में पहली दरार तभी पड़ती है, जो

क्रमश: बढ़ती जाती है । एक स्थान पर सिमी कहती है -- "मैं हृदय के साथ बुद्धि भी रखती हूँ ..... यदि सर्वस्व दूँगी तो सर्वस्व चाहूँगी भी ..... अधिकार दूँगी तो अधिकार लूँगी भी ।"[6]

वस्तुत: आधुनिक जीवन का यह द्वन्द्व नये और पुराने मूल्यों को लेकर है । शिक्षित-समुदाय पुराने मूल्यों को छोड रहा है, पर नये मूल्यों को पूरी तरह स्वीकृत भी नहीं कर पा रहा । पुरूषकी सारी आधुनिकता दूसरी स्त्रियों को लेकर है, जहाँ अपनी पत्नी की बात आती है वहाँ हर पुरूष बुर्जुआ-फ्यूडल हो जाता है । नगरीय उपन्यासों में खंडित दाम्पत्य-जीवन की यह समस्या समाज में एक विष-वेल के रूपमें फैल-पनप रही है ।

बच्चों की त्रिशंकु-सी अवस्था :

उक्त खंडित दाम्पत्य-जीवन की स्थिति में सर्वाधिक दयनीय एवं विवश स्थिति छोटे-छोटे बच्चों की होती है । मन्नू भण्डारी का "आपका बण्टी" उपन्यास इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । उपन्यास में अनय-शकुन के खंडित दाम्पत्य का सबसे बुरा प्रभाव बण्टी पर पड़ता है । बण्टी जब शकुन के पास रहता है तब अजय को "मिस" करता है । दूसरे बच्चों के मम्मी-पापा को देखकर उसे एक अभाव-सा महसूस होता है । इसमें उसका मानस धीरे धीरे कुण्ठित होने लगता है । परतु सब से निकृष्ट स्थिति तो तब आती है जब शकुन अजय की प्रतिक्रिया स्वरूप डॉ॰ जोशी से दूसरा विवाह रचा लेती है । डॉ॰ जोशी के भी दो बच्चे हैं । उन बच्चों में बण्टी कभी सहज नहीं रह सकता । वह स्वयं को अवांछित-सा महसूस करता है ।

पहले वह शकुन या आया के साथ सोता था । अब उसे अकेले बच्चों के कमरे में सोना पड़ता है । एक दिन शतमें वह शकुन और डॉ॰ जोशी को निर्वस्त्र अवस्था में देख लेता है । इसका बड़ा कु-प्रभाव उसके मानस पर पड़ता है । यहाँ बण्टी की इस दयनीय स्थिति के सम्बन्ध में डॉ॰ हेमचन्द्र जैन के यह विचार दृष्टव्य हैं : "इन दोनों के बीच बण्टी अपने आपको सदैव अनजाना - अनचाहा महसूस करता है । बण्टी मम्मी के पास रहते हुए पापा के प्यार का आकाँक्षी बना रहता है, और बापसे मिलते रहने पर भी माँ के प्यार को पाने की चाह उसके मनमें बनी रहती है । मन्नू भण्डारी ने जहाँ एक ओर शकुन के मनकी कसक को चित्रित किया है, वहीं दूसरी ओर छूटती चीजों के प्रति बण्टी के मोह को भी पूरी मनोवैज्ञानिकता से चित्रित किया है । अपने आसपास की सभी वस्तुओंके विषय में जानने की बण्टी की तीखी जिज्ञासा तथा तीव्रता से बदलनेवाली अपनी स्थितियों के साथ "एडजस्ट" न हो पाने के दर्द को भी लेखिका ने बड़ी कुशलता से शब्दबद्ध किया है ।"[62]

भीष्म साहनी के उपन्यास "कडियाँ" का "पप्पू" "वे दिन" का "मीना" "यह भी नहीं" (महीपसिंह) का "टॉनी" "कोहरे" का "मिकी" आदि ऐसे ही अवाँछित अनचाहे बच्चे हैं । परिवार वाटिका से असमय विच्छिन्न ये कोमल-कोमल फूल से बच्चे नियति के क्रूर पैरों तले रौंधे जाते है । दुनिया से उन्हें तिरस्कार एवं धृत्कार मिलता है । अत: आगे चलकर ये रोगी, अपराधी, विक्षिप्त, स्वार्थी, कुठित हो जायें तो उसमें किसका दोष ।

दहेज की समस्या :

अस्पृश्यता की भाँति दहेज की समस्या भी हमारे समाजका एक बहुत बड़ा कलंक है । मुंशी प्रेमचन्द के "निर्मला" जैसा कोई उपन्यास तो इधर नहीं मिलता किन्तु नगरीय परिवेश के कई उपन्यासों में इस कुप्रथा के दुष्परिणामों का विश्लेषण अवश्य मिलता है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा का विवाह इसलिए संपन्न नहीं हो पाता कि उसके पिता दहेज की रकम जुटाने में अपने को असमर्थ पाते हैं । निवृत्ति और बीमारी उन्हें घेर लेती है और अन्ततोगत्वा सुषमा आजीवन अविवाहित रहने को बाध्य हो जाती है । "काँच का आदमी" (पृथ्वीराज मोंगा) की कमला रामलाल जैसे अयोग्य व्यक्तिके हाथों सौंप दी जाती है क्योंकि उसके वृद्ध पिता दहेज नहीं जुटा सकते थे । इस कुप्रथा के कारण ही "रामकली" (शैलेश मटियानी) की रामकली का विवाह नहीं हो पा रहा था और अन्त में उसका निर्धन पिता उसका हाथ बसन्ता के हाथों में सौंप जाता है, जो कुरूप और धनहीन ही नहीं, उम्र में भी उससे बीस-बाइस साल बड़ा है । अत: शारीरिक दृष्टि से वह हमेशा अतृप्त रहती है । उसकी यह अतृप्ति उसे कई पुरूषों की अंकशायिनी बनने पर विवश करती हैं । "यह पथ बन्धु था" के नायक श्रीधर की पुत्री पर उसके श्वसुर पक्ष के लोग इतना अत्याचार करते हैं कि वह पंगु हो जाती है । इस अत्याचार के मूलमें भी दहेज प्रथा है । रमेशचन्द्र शाह के उपन्यास "गोबर गणेश" में सरोज के साथ उसके ससुराल का जो शीत व्यवहार है, उसके पीछे भी यही कारण है कि सरोज के पिता गरीब हैं और वह यथेच्छ दहेज लेकर नहीं आयी है ।

स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचार की समस्या :

आदि-अनादि काल से स्त्रियों पर अत्याचार होते रहे हैं । आज युग बदल गया है । स्त्री-शिक्षा में वृद्धि हुई है, स्त्री-सजगता बढ़ी है, तथापि स्त्रियों पर अत्याचार तो आज भी हो रहे हैं । उच्च-वर्ग और उच्च-मध्य वर्ग तथा मध्यवर्ग में यह अत्याचार मानसिक अधिक होता है, तो निम्न-वर्ग और निम्न मध्य वर्ग में यह शारीरिक स्वरूप का होता है । "रेखा" की रेखा "मुक्तिबोध" की नीलिमा, "डाक बंगला" की इरा, "सारा आकाश" की प्रभा, "कोहरे" की स्मिता, "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" की सेठानी नर्मदाबेन, "कडियाँ" की प्रमिला, "बेघर" की संजीवनी, "छाया मत छूना मन" की वसुधा, "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा, प्रभृति स्त्रियाँ मानसिक अत्याचार की शिकार हैं ।

स्त्रियों पर होनेवाले शारीरिक अत्याचार हम "मुरदाघर" "कोरजा" "रामकली" "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" "तमस" "एक पंखुडी की तेज धार" "प्रश्न और मरीचिका" प्रभृति उपन्यासों में देख सकते हैं । अंतिम तीन उपन्यासों मे स्त्रियों पर अत्याचार कौमी-दंगों के फलस्वरूप मिलते हैं ।

मेहरून्निसा परवेजका उपन्यास "कोरजा" तो मानो पुरूष अत्याचार का कच्चा चिटठा है । नानी के यहाँ पनाह पायेवाली सभी नारियाँ पुरूष के अत्याचार की शिकार हैं । फत्तमा को उसका पति बेतरह बेमुरव्वत होकर पीटता था, अंततोगत्वा वह बिना दवा-दारू के पीलिया में तड़प-तड़प कर दम छोड़ देती है । उसी उपन्यास का जुम्मनखाँ नानी को कर्ज़ देकर मकान गीरवी रखवा लेता है । वह कभी भी कुर्की ला सकता है । उस

उस कुर्की से बचने के लिए साजो को रोज़ जुम्मनखाँ के पास जाना पड़ता था । जुम्मनखाँ साजो को नंगी करके रात-रात भर खड़ा रहता है । साजो विरोध न करे इसलिए उसके शरीरको खंभे से बाँध देता है और फिर हँसता हुआ उसके शरीर पर हाथ फेरता और नोंचता रहता है । इस अमानुषी व्यवहार में उसे आनंद आता है । "काला जल" में भी ज़हिरा भाभी, रशीदा, सलमा, आपा आदि स्त्रियाँ पुरुषों के अत्याचार का शिकार हुई हैं ।

युवा - आक्रोश :

विश्वभर के युवानों में, एक आक्रोश, एक बेचैनी, एक तड़प है क्योंकि युवा मन आदर्शवादी होता है । अपने चारों तरफ की भ्रष्टता और मूल्यहीनता उसे उद्वेलित करती है । शनैः शनैः उसका यह उद्वेलन आक्रोश में बदल जाता है । अमृतलाल नागर के उपन्यास "अमृत और विष" में जहाँ एक ओर लेखकने युवा-वर्ग के गूंगे आक्रोश को वाणी प्रदान की है, वहाँ दूसरी ओर उस दिशाहारा वर्ग की यंत्रणा और कुण्ठाओं को भी संवेगरूप में प्रस्तुत किया है । नागरजी ने इसमें युवा-वर्गकी न केवल विध्वंसात्मक, अपितु रचनात्मक शक्तिको भी पहचाना है । गोमती में बाढ़ आने पर रमेश अपने साथियों के साथ बाढ़ पीड़ितों की रक्षा एवं सहायता के लिए जी-जान से जुट जाता है । एक ओर वह भंगची पिता तथा आर्थिक विपन्नतासे जूझता हुआ टयूशन करके पढ़ता है तथा दूसरी ओर युवा-वर्ग को संगठित करके पूंजीवादी राजनीति के गूर्गों से टक्कर लेता है । इस सन्दर्भ में डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का यह मत उल्लेखनीय है : "वास्तव में "अमृत

और विष" की कथा सामयिक भारत के तरूण-वर्ग के बाह्य और आंतरिक संघर्ष की कथा है । यह पहला उपन्यास है, जिसने तरूणों की शक्तिको साहित्यिक स्तर पर स्वीकार किया है । काजर की कोठरी में रहते हुए भी नयी पीढ़ी कालिमा को मिटा डालने के लिए कटिबद्ध है । इस कालिमा को वे अपने मनकी ज्योति और बाह्य संघर्ष से मिटा डालेंगे ।"[63] काशीनाथ सिंह के "अपना मोर्चा" में युवा-समस्या के सन्दर्भ में छात्र-आन्दोलनों को परिवेश-बनाया-गया है ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रालोचन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं --

:1: मानव-जीवन की समस्याएँ परस्पर जुड़ी हुई होती हैं । सामाजिक समस्याओंका उद्भव कभी आर्थिक समस्याओं से होता है और यह आर्थिक समस्याएँ फिर मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को जन्म दे सकती हैं । तात्पर्य कि कोई भी समस्या विशुद्ध रूपसे सामाजिक या आर्थिक नहीं होती ।

:2: वस्तुवादी चेतना, वैयक्तिक चिंतन, नगरीकरण, आधुनिक सोच व चिंतन, शिक्षा आदि के कारण पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया देखने में आती है, फलत: संयुक्त परिवार आणविक परिवारों में बदल रहे हैं ।

:3: प्रेम-विषयक विभावना में परिवर्तन आने के कारण स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में भी बदलाव आया है ।

:4: नैतिक मूल्यों के पतन और व्यापक भ्रष्टाचार के कारण समाज की स्थिति चिंतनीय होती जा रही है ।

:5: जातिवाय और कौमी-वातावरण के कारण समग्र देशका परिवेश विषाक्त हो रहा है, जो देश के विकास एवं प्रगति में एक बहुत बड़ी बाधा है ।

:6: मध्य-वर्ग उच्च-वर्गका और उच्च वर्ग पश्चिम का अनुसरण कर रहा है । उसमें समाजकी अपनी इयत्ता कम होती जा रही है । भीतरी खोखलापन उसकी आत्मा का विध्वंश कर रहा है ।

:7: शिक्षित महिलाओं के सन्दर्भ में शोषण का एक नया कोण दृष्टिगोचर हो रहा है ।

:8: स्त्री-शिक्षाने जहाँ स्त्रियों को आत्मनिर्भर किया है, वहाँ स्त्री-पुरुष अहं की टकराहट भी बढ़ी है, जिसके कारण स्त्री-पुरुषों के दाम्पत्य जीवनमें दरारें पड़ने लगी हैं । स्त्री-पुरुष की इस टकराहटमें शैशव का बलिदान लिया जाता है ।

:9: स्त्रियों पर अत्याचार अब भी हो रहे हैं ।

:10: साम्प्रतिक भ्रष्ट स्थितियों के प्रति युवा-वर्गमें आक्रोशकी भावना मिलती है ।

सन्दर्भ

1 "रेखा" : पृ॰ 193 ।

2 H.E. Batus : 'Society in Transition' : P. 39 ।

3 "सारा आकाश" : पृ॰ 306 ।

4 वही: पृ॰ 151 ।

5 वही: पृ॰ 208 ।

6 "अमृत और विष" : पृ॰ 234 ।

7 "हिन्दी गद्य के निर्माता : पं॰ बालकृष्ण भट्ट" : डॉ॰ राजेन्द्रकुमार शर्मा : पृ॰ 255 ।

8 डॉ॰ आई॰ पी॰ देसाई : "समाज" , जनवरी-1956 ।

9 "वे दिन" : पृ॰ 34 ।

10 "Dildo -- This instrument, which is a great source of satisfaction to ladies is a beautifully made and accurate replica of the erect penis with a hollow rubber bulb at its base which holds about a third of a cup of fluid. It is filled by squeezing the air from it and then dipping the tip of the dildo into a glass of warm milk or cream; the liquid is expelled by pressure on the the bulb, eja evlating it in rhythmic squirts into the vagina in simulation of the male orgasm." : The Sex Life File : P. 64.

11 "The notion that it might be possible to bring male and female cells into contact with one-another by means of some other method than that employed by nature. xxx The attempt is often made is cases where a marriage

is childless. For one reason or another (but) occasionally. There are cases of unmarried women who wish to become mothers in this way." : An ABZ of Love : P. 199.

12 लोकसत्ता दैनिक : लेख : दिनांक 8-5-1985 ।

13 See, 'Marriage and Family in India' : P. 245.

14 "वे दिन" : पृ॰ 211 ।

15 वही: : पृ॰ 209 ।

16 वही: पृ॰ 24 ।

17 वही: पृ॰ 27 ।

18 "बैसाखियोंवाली इमारतें" : पृ॰ 2 ।

19 वही: पृ॰ 24 ।

20 वही: पृ॰ 31 ।

21 वही: पृ॰ 10 ।

22 वही: पृ॰ 66 ।

23 वही: पृ॰ 37 ।

24 वही: पृ॰ 64 ।

25 "एक पति के नोट्स" : पृ॰ 12 ।

26 वही: पृ॰ 77 ।

27 वही: पृ॰ 78 ।

28 "चित्तकोबरा" : पृ॰ 109 ।

29 देखिए : "दूसरी बार" : पृ॰ 111 ।

30 "हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन" : पृ॰ 264 ।

31 "अमृत और विष" : पृ॰ 217 ।

32 "एक पति के नोट्स" : पृष्ठ 4 ।

33 "अन्धेरे बन्द कमरे" : पृ॰ 511 ।

34 "अन्तराल" : पृ॰ 70-71 ।

35 "हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय अध्ययन" : पृ॰ 415 ।

36 "अधूरे साक्षात्कार": पृ॰ 144 ।

37 "काला जल" : पृ॰ 18 ।

38 "मुरदाघर" : पृ॰ 179 ।

39 "महाभोज" : पृ॰ 165 ।

40 "इमरतिया" : पृ॰ 22 ।

41 "काला जल" : पृ॰ 358 ।

42 "अन्तराल" : पृ॰ 36 ।

43 "भारतीय समाज और संस्कृति" : पृ॰ 318 ।

44 "साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास" : पृ॰ 36-37 ।

45 "काला जल" : पृ॰ 361 ।

46 "टोपी शुक्ला" : पृ॰ 34 ।

47 वही: पृ॰12-13 ।

48 वही: पृ॰ 131 ।

49 वही: पृ॰ 152-153 ।

50 वही: पृ॰ 125 - 126 ।

51 दृष्टव्य : "तमस" : पृ॰ 147 ।

52 "तमस" : पृ॰ 163-164 ।

53 "एकोगी नहीं राधिका"..2 : पृ॰ 132 ।

54 वही: पृ॰ 104-105 ।

55 "दिल एक सादा कागज़" : पृ॰ 174 ।

56 वही: पृ॰ 175 ।

57 वही: पृ॰ 176 ।

58 "नदी फिर बह चली" : पृ॰ 304-305 ।

59 "एक चूहे की मौत" : पृ॰ 99 ।

60 "कड़ियाँ" : पृ॰ 12 ।

61 "कोहरे" : पृ॰ 95 ।

62 "प्रकर" : मई-जून, 1972 : पृ॰ 46 ।

63 "हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ" :पृ॰ 106 ।

• • • • •